विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय : अवधारणा एवं स्वरूप

डॉ. निशाराणी महादेव देसाई
सहा. प्राध्यापक
राजे रामराव महाविद्यालय, जत
जि. सांगली.
मो. 8600615451
nisharanidesai@gmail.com

सारांश :
विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति भी मनुष्य ही है, अगर पूरे समाज द्वारा उनको इन्सानियत से बर्ताव किया जाएगा तो वे भी अपना सीर उठाकर जी सकेंगे| सरकार द्वारा शिक्षा और मुलभूत सुविधा उनको भी मिलनी जरुरी है तभी वे अपनी जिंदगी बेहतरी से जी सकेंगे| विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति की कुछ कमिया होती है, ऐसी आचार-व्यवहार होते है, जिसे उसी समाज का दूसरा व्यक्ति स्वीकार नहीं करता, लेकिन इस बात को अगर सभ्य, पढ़ा लिखा समाज नहीं समझेगा उनके प्रति संवेदनाओं को जागृत नहीं करेगा तो यह समाज का हिस्सा हमेशा कमजोर ही रहेगा| जरुरी है इनको शिक्षा और मुलभूत सुविधाएँ मुहैय्या करायी जाए, तभी इनका विकास संभव है| हर कोशिश प्रयास करना जरुरी है ताकि वे भी सम्मान से जी से|

बीज शब्द- विमुक्त, घुमंतू, जनजाति, साहित्य, समाज।

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण होता है| समाज में जो घटित होता है उसका सजीव एवं वास्तव चित्रण साहित्यकार साहित्य के माध्यम से करता है| ऐसा कोई भी विषय अछूता नहीं है जिस पर साहित्य लेखन न हुआ है| चाहे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पुरुष विमर्श, आदिवासी, किन्नर और वृद्ध विमर्श के साथ-साथ घुमंतू एवं विमुक्त जन-जाति भी साहित्य लिखा जा रहे है| सदियों से उपेक्षित रही विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति इक्कीसवीं सदी में भी उपेक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर है| सभ्य समाजद्वारा उनकी ओर देखने का नजरिया आज भी वैसा ही है जैसा पहले हुआ करता था| ब्रिटिश सरकारने उन्हें अपराधी घोषित कर दिया उसके पश्चात् विमुक्त एवं घुमंतू जन-जाति एक-स्थान से दूसरे स्थान घुम्मकड़ी कर रही है| वास्तव में आज जरुरत है विमुक्त एवं घुमंतू जनजाति को समझने की|

इतिहास इस बात का गवाह है कि भारतीय साहित्य आंदोलन के बुद्ध काल, भक्तिकाल, स्वतंत्रता आंदोलन के सारथी वंचित और हाशिए के समाज से संबंधित थे, जिनके संघर्ष और सहयोग के बिना यह स्वतंत्र भारत की आशातीत प्रगति असंभव थी, किंतु उन्हें भूला दिया गया है इस प्रकार का जो वंचित समाज है वह है विमुक्त एवं घुमंतू समुदाय|

विमुक्त या घुमंतू जाति का अर्थ है विशेष जाति, जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता| और आजीविका की तलाश में एक-स्थान से दूसरे स्थान घूमा करते है, घूमना इनका शौक नहीं बल्कि विवशता है| विमुक्त जनजातियाँ वे हैं, जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किये गए अपराधिक अधिनियम के तहत अधिसूचित किया गया था, जिसके तहत परी आबादी को जन्म से अपराधी घोषित कर दिया गया था| वर्ष 1952 में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और समुदायों को विमुक्त कर दिया गया|

घुमंतू जनजातियाँ निरंतर भौगोलिक गतिशीता बनाए रखती हैं, जब कि अदर्ध् घुमंतू जनजातियाँ वे हैं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान आवाजाही तो करती हैं, किंतु वर्ष में एक बार मुख्यत: व्यावसायिक कारणों से अपने निश्चित निवास स्थान पर जरुर लौटती है| घुमंतू या अदर्ध् घुमंतू जनजातियों के बीच अंतर करने हेतु विशिष्ट जाति या सामाजिक-आर्थिक मानकों को शामिल नहीं किया जाता है, बल्कि यह उनकी गतिशीलता से प्रदर्शित होती है| जातिवार जणगनणा 2011 के अनुसार भारत में विमुक्त एवं

घुमंतू जन-जातियों की आबादी 15 करोड है (जब कि वर्तमान समय में इनकी वास्तविक आबादी 20 करोड से अधिक है|) यह विशाल समुदाय भारत की आजादी के बाद भी आज तक सामाजिक न्याय से पूरी तरह वंचित एवं विकास की धारा से कोसों दूर है|

वास्तव में घुमंतू समुदाय वह समुदाय हैं, जो सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करता रहता है| अपना भोजन-पानी, पशु-पक्षी, कुत्ते, बच्चे आदि के साथ एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहा करते हैं| उनका कोई निश्चित स्थान नहीं हुआ करता| हाँ वर्ष के निश्चित कुछ दिनों में वे निश्चित समय पर एक जगह निवास करे थे| बाकी महिनों घूमते-फिरते रहते हैं| इतिहास गवाह है कि ऐतिहासिक समय से लेकर आधुनिक समय तक भारत की एक बड़ी जनसंख्या घुमंतू रही है| अपनी जीविकोपार्जन के लिए ये लोग आयुर्वेदिक औषधियाँ, पशु, उत्पाद, ऊन और अर्थ, मूल्यवान रत्न आदि बेचते रहते है| इसके अलावा नाचना, गाना, अन्य करतब दिखाना जैसा काम करते रहते है|

ब्रिटिश शासन काल में घुमंतू एवं विमुक्तो का जीवनबेहद संपन्न और सम्मानजनक हुआ करता था, इतना ही नहीं बल्कि हमारा पूरा सामाजक ताना-बाना इन समुदायों पर निर्भर था| यातायात हो, मनोरंजन हो, चिकित्सा आदि के लिए इन जन-जातियों का सहारा लेना पड़ता था| बंजारे, गाड़िया लोहार बावरिया, नट, कालबेलिया, भोपा, सीकलीगार, सिंगीवाल, कुचबंदा, कलंदर आदि जन-जातियाँ समाज का अभिन्न हिस्सा थे| यह जनजातियाँ इनके पारंपारिक व्यवसाय से अपना उदर-निर्वाह चलाते थे| हमारे देश में आज घुमंतू, अर्ध घुमंतू, विमुक्त जन जातियों में लगभग 840 जातियाँ है, जिनमें भारत का सर्वाधिक पीछड़ा और उपेक्षित वर्ग है| जिसमें सैंकड़ों जातियों शिक्षा और मुलभूत सुविधाओं के अभाव में ये जातियाँ जानवरों से बदतर जीवन व्यतीत करने को विवश है|

यह जन जातियाँ इनके पारंपारिक व्यवसाय से अपना उदर निर्वाह चलाते थे| जैसे 'बंजारे' पशुओं पर माल देना, 'गाडिया लोहार' जगह-जगह जाकर औजार बनाना और बेचना, 'बावरिये' जानवरों का शिकार और उनके अंगों का व्यापार, 'नट' नृत्य करना, 'कालबेलिया (सपेरा), सांपों का खेल दिखाना, 'भोपा' स्थानिय देवताओं का आख्यान गाने का काम, 'सिकलगीर' हथियारों में धार लागने का काम, 'सिंगीवाल' हिरन के टूटे हुए सींग से लोगों का इलाज करते थे और इन्हें नैसर्गिक औषधियों का ज्ञाता समझ जाता था| 'कुचबंदा' मिट्टी के खिलौने बनाना, 'कलंदर', भालुओं और बंदरों क करतब दिखाना, 'ओढ' नहर बनाने और जमीन को समतल करने का काम करते थे, 'बहुरुपिये' हाथ की सफाई दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे| एक पक्षी भी अपने लिए घोंसला बनाता है, गली का कुत्ता भी अपने लिए एक स्थान खोज लेता है लेकिन विमुक्त एवं घुमंतू जन-जाति के लिए अपना घर नसीब नहीं है| जैसे-जैसे देश में विकास होता गया इनका पारंपरिक व्यवसाय कमजोर होने लगा| शिक्षा का अभाव और मुलभूत सुविधाओं का अभाव के कारण सभ्य द्वारा उनको तिरस्कृत किया जाता है|

भगवानदास मोरवाल का 'रेत' उपन्यास कंजर यानी कानन, जंगल में घूमने वाली जनजाति को केंद्र में रखकर लिखा गया है| इनका दर्द, घुटन इन संवादों से स्पष्ट झलकती है, "बिना इजाजत या इत्तिला दिए कोई कंजर गांव छोड़कर जा नहीं सकता....और जाता है तो मुखिया को इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिसकी इत्तिला मुखिया थाने में देनी होती है|" ....इनकी महिलाओं को भी थाने में जाकर हाजिरी देनी पड़ती है|"

मणि मधुकर द्वारा लिखित 'पिंजरे में पन्ना' राजस्थान की गाडिया लोहार जनजाति पर आधारित उपन्यास है| यह जनजाति खानाबदोश जीवन व्यतीत करती है, के संदर्भ मैत्रयी पुष्पा का 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास बुंदेलखंड की यायावर कबूतरा जनजाति को उजागर करने वाला उपन्यास है|

रांगेय राघव कृत 'धरती मेरा घर' जिसमें अपने ही सिद्धांतो, आदर्शो और जीवन मूल्यों पर जीने वाले, कभी घर बनाकर न रहनेवाले, खानाब दोशों की तरह जीवन यापन करने वाले और समाज में अलग रहनेवाले इन गाडिये लोहार के जीवन के अनछुए एवं अनदेखे पहलुओं का सजीव चित्रण हुआ है|

लेखिका शरद सिंह का उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' स्त्री विमर्श केंद्रित विमुक्त एवं घुमंतू बेड़िया जन जाति की ही मार्मिक अभिव्यंजना है|

संदर्भ :

1. विमुक्त जातियाँ : समाज, भाषा और संस्कृति, डॉ. श्रीकृष्ण काकडे, नॅशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया|
2. रेत, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली|
3. पिंजरे में पन्ना, मणि मधुकर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली|
4. अल्मा कबुतरी, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली|
5. धरती मेरा घर, रांगेय राघव, राजपाल ॲन्ड सन्स, दिल्ली|
6. पिछले पन्ने की औरतें, शरदसिंह, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली|